वर्ष-6 अंक-1 जनवरी-मार्च, 2016 मूल्य - ₹25

हिन्दी काव्य की संग्रहणीय त्रैमासिक पत्रिका

पारस परस

जयशंकर प्रसाद

जन्म- 30 जनवरी, 1889 निधन-14 जनवरी, 1937

चमकूँगा धूल कणों में,
सौरभ हो उड़ जाऊँगा।
पाऊँगा कहीं तुम्हें तो,
ग्रह-पथ में टकराऊँगा।

"जो घनीभूत पीड़ा थी,
मस्तक में स्मृति-सी छायी।
दुर्दिन में आँसू बन कर,
वह आज बरसने आयी।

मेरे क्रदन में बजती,
क्या वीणा, जो सुनते हो।
धागों से इन आँसू के,
निज करुणा-पट बुनते हो।

रो-रोकर, सिसक-सिसक कर,
कहता मैं करुण कहानी।
तुम सुमन नोचते सुनते,
करते जानी अनजानी।

वर्ष : 6 अंक : 1 जनवरी-मार्च, 2016 रजि. नं. : यूपी एचआईएन/2011/39939

पारस परस

हिन्दी काव्य की समस्त विधाओं की संग्रहणीय त्रैमासिक पत्रिका

संरक्षक मंडल

डा. एल.पी. पाण्डेय
अभिमन्यु कुमार पाठक
अरुण कुमार पाठक

संपादक

डॉ अनिल कुमार

कार्यकारी संपादक

सुशील कुमार अवस्थी

संपादकीय कार्यालय

538 क/1324, शिवलोक
त्रिवेणी नगर तृतीय, लखनऊ
मो. 9935930783
Email: paarasparas.lucknow@gmail.com

लेआउट एवं टाइप सेटिंग

अभ्युदय प्रकाशन प्रा.लि.
लखनऊ
मो. 9696433312

स्वामी प्रकाशक मुद्रक एवं संपादक डा. अनिल कुमार द्वारा प्रकाश पैकेजर्स, 257, गोलागंज, लखनऊ से मुद्रित कराकर सी-49, बटलर पैलेस कालोनी, जापलिंग रोड, लखनऊ से प्रकाशित।

पारस परस में प्रकाशित रचनाओं में व्यक्त विचार संबंधित रचनाकारों के हैं। संपादक अथवा प्रकाशक का रचनाओं में व्यक्त विचारों से सहमत होना आवश्यक नहीं है। पत्रिका से संबंधित सभी विवाद लखनऊ न्यायालय के अधीन होंगे। उपरोक्त सभी पद मानद एवं अवैतनिक हैं।

अनुक्रमणिका

सम्पादकीय

मात–पिता सम कोई न दूजा.....		2

श्रद्धा सुमन

छोड़ गये, क्यूँ, हमें अकेले	डा. अनिल कुमार पाठक	4

कालजयी

कोई न आया, पास मेरे	पारसनाथ पाठक 'प्रसून'	5
भारत गीत	श्रीधर पाठक	6
ले चल वहाँ भुलावा देकर	जय शंकर प्रसाद	7
प्यारा भारत देश	राम नरेश त्रिपाठी	8

समय के सारथी

दूर बहुत रहते हो तुम	केसरी नाथ त्रिपाठी	10
रीझ गया यौवन	शिव भजन कमलेश	11
चलते रहना ही जीवन है	बी.डी.सिंह	12
फिर जो, फिर गये वे दिन	सुरेन्द्र पाण्डेय रज्जन	13
तुम्हीं प्यार मेरा	योगेश प्रवीन	14
दम उस में है, कहाँ यारों	डॉ. दीप बिलासपुरी	15
उपवन सूखा है	डॉ. ब्रह्मजीत गौतम	16
कुछ मुक्तक	कमल किशोर भावुक	17
कलिकाल	रामदेव लाल 'विभोर'	18
गजल	राजेन्द्र वर्मा	19
उठो भाई उठो	श्रीधर पाठक	20
मामी निशा	राम नरेश त्रिपाठी	21
चतुर चित्रकार	राम नरेश त्रिपाठी	22

नारी स्वर

मैं कहूँगी कथा	सविता सिंह	23
परिभाषा	कात्यायनी	24
स्मृतियाँ, ओ प्रिय	विद्याविन्दु सिंह	25
दुल्हन घर पिया के जाती है	श्रीमती पुष्पा सुमन	26
क्या खूब इशारा था	सुश्री वर्षा सिंह	27
परिन्दों सी दुनिया	कुसुम वर्मा'कृष्ण'	28
चाँद शिशु	डा. शांति देवबाला	29
हाइकु	सरला साहू	30
अहसास	रचना शुक्ला	31
बँटवारा	श्रीमती सुनीता यादव	32
पिता	लक्ष्मी शर्मा	33
मन	कुलतार कौर	34
समर्पण	डा.मिथिलेश कुमारी मिश्रा	35

नवोदित रचनाकार

संत तुलसीदास	कृष्ण कुमार वर्मा'कृष्ण लखनवी'	36
बस आज ही दिन है	शशिकांत मिश्र	37
याद आती काकोरी	जयराम दास रास्तोगी	38
गजल	रमन लाल अग्रवाल 'रमन'	39
नयन मूक भाषा में	श्रीरमन	40

मात-पिता सम कोई न दूजा.....

मेरे एक मित्र बहुत दिनों के बाद मिले। वे मेरे विद्यार्थी जीवन के मित्र थे। हम लोगों ने प्राथमिक विद्यालय से लेकर विश्वविद्यालय तक की शिक्षा साथ ही पायी और रोजगार की तलाश में भी साथ–साथ रहे। प्रतियोगी परीक्षाओं में किसी को सफलता मिली तो किसी को असफलता। खैर, विद्यार्थी जीवन से लेकर इसके बाद की बातों की चर्चा होती रही। इसी क्रम में उन्होंने एक मित्र की चर्चा छेड़ दी जो हम दोनों का ही मित्र था। पढ़ाई में अव्वल, होनहार, मिलनसार, माहौल को जीवन्त रखने वाला वह मित्र अनोखा रहा। अपनी लगन से वह प्रारम्भिक प्रयास में ही दूसरे प्रदेश के राज्य की सिविल सेवा में सफलता प्राप्त कर उच्च पद पर नियुक्त हुआ। इसके बाद उससे मेरा सम्पर्क नहीं रहा और उसके बारे में कम से कम मुझे कोई जानकारी नहीं थी। मेरे मित्र ने बताया, "कुछ दिन पहले वह इलाहाबाद आया था तथा उसने फोन करके एक होटल में बुलाया। वहाँ जाने पर वह फूट–फूट कर रोने लगा। पूरे प्रसंग से परिचित न होने के कारण मैं कुछ बोल नहीं पा रहा था। मैंने उसे सांत्वना देते हुए चुप कराया, फिर हम दोनों लोग बैठ गये। उस मित्र ने कहा कि आज वह अपनी माताजी की अस्थियाँ संगम में विसर्जित करने के लिये आया हुआ है।" फिर उसने अपनी लम्बी करुण कथा की शुरुआत की जो संक्षेप में इस प्रकार थी, "सेवा में कार्यभार ग्रहण करने के पश्चात्मैं माता–पिता को अपने साथ ले गया, उस समय मैं अविवाहित था। कुछ दिनों के बाद जब मेरा विवाह हुआ तो उनके साथ–साथ मेरी पत्नी भी रहने लगी। कुछ दिनों तक सब ठीक–ठाक चला किन्तु धीरे–धीरे मेरी पत्नी व माँ के मध्य मतभेद व विवाद शुरू हो गया जो बाद में विकराल रूप लेता गया। मेरे पिता ने माँ को साथ लेकर गाँव वापस लौटने का निश्चय किया किन्तु इसी बीच पिताजी की तबियत खराब हो गयी और उनकी बीमारी गम्भीर होती गयी। अन्ततः उन्होंने दम तोड़ दिया। इसके पश्चात् माँ को गाँव में भेजना उचित नहीं लगा किन्तु घर की परिस्थितियाँ ऐसी बन गईं कि पत्नी और माँ का एक साथ रहना सम्भव नहीं लग रहा था इसलिये न चाहते हुए भी मैंने माँ को वृद्धाश्रम में रख दिया। कुछ दिनों तक माँ को वृद्धाश्रम में परेशानी हुई और वे असहज रहीं किन्तु घर की परिस्थितियों को समझते हुए तथा अन्य वृद्ध आश्रमवासियों से हुए मेलजोल के फलस्वरूप वे सामान्य जीवन व्यतीत करने लगीं। मैं सप्ताह में एक बार माँ से जाकर मिल आता और आश्रम में माँ के खर्चों को नियमित रूप से जमा करता रहा किन्तु इसी बीच मेरा स्थानान्तरण हो गया और मैं दूसरी जगह चला गया किन्तु वहाँ पर वृद्धाश्रम जैसी कोई संस्था न होने के कारण माँ पूर्व के ही वृद्धाश्रम में रहती रहीं यद्यपि मैं माँ का खर्च नियमित भेजता रहा। किन्तु बीच में लगभग एक साल तक माँ के पास नहीं जा पाया। धीरे–धीरे माँ की बढ़ती उम्र तथा मुझसे न मिल पाने की पीड़ा के साथ ही अन्य कई कारणों से वह अस्वस्थ हो गईं और एक दिन उनकी हालत इतनी गम्भीर हो गयी कि वे अचेतन अवस्था में चली गईं। मुझे दूरभाष पर सूचित किया गया मगर उस दिन जनपद का प्रभार होने के कारण मुख्यालय छोड़ना सम्भव नहीं था। अगले दिन भी उच्चाधिकारियों से छुट्टी लेने का प्रयास किया किन्तु छुट्टी नहीं मिल पायी और इसी बीच माँ का देहान्त हो गया। माँ के निधन की सूचना प्राप्त होते ही मैं रोते–बिलखते वृद्धाश्रम के लिये रवाना हो

गया। वहाँ पहुँचकर मैंने माँ के मृत शरीर को देखा, उसमें अब जीवन का कोई लक्षण नहीं था। मुझे अत्यन्त आघात पहुँचा और मैं दहाड़ मारकर रोने लगा परन्तु अब क्या हो सकता था ? अब तो जीवन भर पश्चाताप करने के सिवा कुछ भी शेष न रहा..... ।"

यह सुनकर मेरी आँखें भर आयीं। मैं भी अपने माता–पिता जी के साथ किये गये अपने बर्ताव को सोचकर दुःख में डूब गया। आगे की चर्चा के लिये मन तैयार नहीं हुआ और थोड़ी देर बाद मेरा मित्र चला गया। फिर मैं सोचता रहा कि इसमें दोष किसका था ?क्या माता–पिता का हमारे जीवन में कोई स्थान नहीं है?क्या माता–पिता के लिये हमारे घर में कोई जगह नहीं है? क्या उन्हें वृद्धाश्रम जैसे स्थान पर भेजना सही है?

माता–पिता का स्थान विश्व की सभी संस्कृतियों में शीर्षस्थ है। माँ जीवन देती है, पालन–पोषण करती है, रक्षा करती है और हमें जीवन की प्रारम्भिक और व्यवहारिक शिक्षा प्रदान करती है। माँ सभी की जननी है चाहे वह देवता हो, मानव हो अथवा पशु–पक्षी हो। इसी तरह पिता भी संतान के पालन–पोषण, सुरक्षा, शिक्षा के लिये सदैव तत्पर रहता है और वह मोती रूपी संतान के समुचित विकास के लिये सीपी रूपी आवरण की तरह उसको सुरक्षा प्रदान करता है तथा उसे कोई क्षति नहीं पहुँचने देता। माता–पिता स्वप्न में भी संतान के हित के लिये ही तत्पर रहते हैं और किसी भी रूप में उसका अहित नहीं चाहते। वे अपनी संतान से किसी प्रतिदान या कृतज्ञता की भी अपेक्षा नहीं रखते बल्कि, यदि उनकी कीमत पर भी संतान के सुख में वृद्धि हो रही हो तो उसके लिये वे अपने जीवन का त्याग भी करने से भी नहीं घबराते हैं। आर्ष साहित्य में सन्तानों से भी यह अपेक्षा है कि ''अनुव्रतः पितुः पुत्रो मात्रा भवतु संमना ।...'' (अथर्ववेद 3/30/2) अर्थात्– पुत्र पिता के अनुकूल ही कार्य करे, प्रतिकूल कार्य कदापि न करे। माता के साथ भी अच्छे मनवाला बना रहे अर्थात् पिता–माता दोनों के प्रति सदा प्रेम–सद्भाव बनाये रहे। उपलक्षण न्याय से यही पुत्री के सन्दर्भ में भी है।

वयः क्रम के अनुसार सामान्य रूप से एक व्यक्ति प्रारम्भ में पुत्र या पुत्री के पश्चात् कालान्तर में पिता या माता भी बनता है और यह चक्र सदैव चलता रहता है। तात्पर्य यह है कि यदि आज हम पुत्र एवं पुत्री हैं तो कल हम अपनी संतानों के पिता व माता बनेंगे यानि हमारी प्रास्थिति भी पिता व माता की होगी। लगता है कि हम इस चक्र के मर्म को समझते हुए भी उससे अन्जान बनने का प्रयास करते हैं अन्यथा बार–बार ऐसी स्थितियाँ न उत्पन्न हों।

आज की परिस्थितियों में केवल यह कहकर हम नहीं बच सकते कि सास–बहू के मत–वैभिन्न्य या विवाद से बचने के लिये माता–पिता के लिये वृद्धाश्रम सही विकल्प है। आखिर वे बेटा–बहू, बेटी–दामाद, पोता–पोती, नाती–नातिन आदि से भरे–पूरे अपने परिवार में क्यों नहीं रह सकते ? पारिवारिक सौम्यता, सामंजस्य, सद्भाव की संस्कृति निष्प्रभावी क्यों हो रही है?

मैं उक्त प्रसंग में अपने भावों को व्यक्त करते हुए, इस मार्मिक समस्या के समाधान एवं प्रभावी मन्तव्यों का दायित्व सुधी पाठको के ऊपर छोड़ रहा हूँ।

शुभ कामनाओं के साथ,

डा0 अनिल कुमार

छोड़ गये, क्यूँ, हमें अकेले

- डा. अनिल कुमार पाठक

छोड़ गये, क्यूँ, हमें अकेले,
कुल के मुखिया बाबू जी।
समझ न आये, दिल घबराये,
हम हैं, दुखिया, बाबू जी।।

भरी दुपहारी हुआ, अंधेरा,
चारों ओर दुःखों का घेरा।
बीच धार में छोड़ गया है,
मुझे अकेला, नाविक मेरा।
संगी–साथी काम न आये,
डूबी नइया, बाबू जी।
समझ न आये,दिल घबराये,
हम हैं, दुखिया, बाबू जी।।

पुष्प–पथों पर काँटे बिखरे,
मिले हमें क्यूँ ज़ख़्म ये गहरे।
रोयें–बिलखें, सभी आत्मजन,
तेरा जाना, सबको अखरे।
आत्मसात् दुःख किया सभी ने,
कोई न सुखिया, बाबू जी।
समझ न आये, दिल घबराये,
हम हैं, दुखिया, बाबू जी।।

इतनी जल्दी जब जाना था,
हम सबको यूँ ठुकराना था।
इतना नेह–दुलार दिया क्यूँ,
जीवन भर जब तड़पाना था।
गया चैन, सुख, चली गयी–
नयनों की निंदिया, बाबू जी।
समझ न आये, दिल घबराये,
हम हैं, दुखिया, बाबू जी।।

❖❖❖

कोई न आया, पास मेरे

– पारसनाथ पाठक 'प्रसून'

कोई न आया, पास मेरे।
घिर गईं मुझ पर घटायें,
भर गईं उर में व्यथायें,
यह हृदय जलने लगा है,
जब से नयन निज तुमने हैं, फेरे।
कोई न आया, पास मेरे।।

मधु प्रतीक्षा में तुम्हारी,
बीत जाती रात सारी,
मैं अकेला हूँ, यहाँ पर,
पर न मिलते हाय दर्शन आज तेरे।
कोई न आया, पास मेरे।।

भार ले अपना धरा पर,
ताकता, निःसहाय हो कर,
पर जलन की कालिमा सी,
नित निराशा की घटा रहती है, घेरे।
कोई न आया, पास मेरे।।

❖❖❖

भारत गीत

-श्रीधर पाठक

जय–जय प्यारा, जग से न्यारा
शोभित सारा, देश हमारा,
जगत–मुकुट, जगदीश दुलारा
जग–सौभाग्य, सुदेश।
जय–जय प्यारा भारत–देश।

प्यारा देश, जय देशेश,
अजय अशेष, सदय विशेष,
जहाँ न संभव अघ का लेश,
संभव केवल पुण्य–प्रवेश।
जय–जय प्यारा भारत–देश।

स्वर्गिक शीश–फूल पृथिवी का,
प्रेम–मूल, प्रिय लोकत्रयी का,
सुललित प्रकृति–नटी का टीका,
ज्यों निशि का राकेश।
जय–जय प्यारा भारत–देश।

जय जय शुभ्र हिमाचल–श्रृंगा,
कल–रव–निरत कलोलिनि गंगा,
भानु–प्रताप–समुत्कृत अंगा,
तेज–पुंज तप–वेश।
जय–जय प्यारा भारत–देश।

जग में कोटि–कोटि जुग जीवै,
जीवन–सुलभ अमी–रस पीवै,
सुखद वितान सुकृत का सीवै,
रहै स्वतंत्र हमेश।
जय–जय प्यारा भारत–देश।

❖❖❖

ले चल वहाँ भुलावा दे कर

- जय शंकर प्रसाद

ले चल वहाँ भुलावा देकर,
मेरे नाविक ! धीरे–धीरे।

जिस निर्जन में सागर लहरी,
अंबर के कानों में गहरी–
निश्छल प्रेम–कथा कहती हो,
तज कोलाहल की अवनी रे !

जहाँ साँझ–सी जीवन छाया,
ढीले अपनी कोमल काया,
नील नयन से ढुलकाती हो,
ताराओं की पाँति घनी रे !

जिस गंभीर मधुर छाया में–
विश्व चित्र पट चल माया में–
विभुता विभु–सी पड़े दिखाई
दुःख–सुख वाली, सत्य बनी रे !

श्रम–विश्राम क्षितिज बेला से–
जहाँ सृजन करते मेला से–
अमर जागरण उषा नयन से–
बिखराती हो ज्योति घनी रे !

❖❖❖

प्यारा भारत देश

- राम नरेश त्रिपाठी

मन–मोहिनी प्रकृति की जो गोद में बसा है।
सुख–स्वर्ग–सा जहाँ है वह देश कौन–सा है ?
जिसका चरण निरन्तर रतनेश धो रहा है।
जिसका मुकुट हिमालय वह देश कौन–सा है ?
नदियाँ जहाँ सुधा की धारा बहा रही हैं।
सींचा हुआ सलोना वह देश कौन–सा है ?
जिसके बड़े रसीले फल, कन्द, नाज, मेवे।
सब अंग में सजे हैं, वह देश कौन–सा है ?
जिसमें सुगन्ध वाले सुन्दर प्रसून प्यारे।
दिन–रात हँस रहे हैं वह देश कौन–सा है ?
मैदान, गिरि, वनों में हरियालियाँ लहकतीं।
आनन्दमय जहाँ है वह देश कौन–सा है ?
जिसकी अनन्त धन से धरती भरी पड़ी है।
संसार का शिरोमणि वह देश कौन–सा है ?
सबसे प्रथम जगत् में जो सभ्य था यशस्वी।
जगदीश का दुलारा वह देश कौन–सा है ?
पृथ्वी–निवासियों को जिसने प्रथम जगाया।
शिक्षित किया सुधारा वह देश कौन–सा है ?
जिसमें हुए अलौकिक तत्वज्ञ ब्रह्मज्ञानी।
गौतम, कपिल, पतंजलि वह देश कौन–सा है ?
छोड़ा स्वराज तृणवत् आदेश से पिता के।
वह राम थे जहाँ पर वह देश कौन–सा है ?
निःस्वार्थ शुद्ध प्रेमी भाई भले जहाँ थे।
लक्ष्मण–भरत सरीखे वह देश कौन–सा है ?
देवी पतिव्रता श्री सीता जहाँ हुई थी।
माता–पिता जगत् का वह देश कौन–सा है ?
आदर्श नर जहाँ पर थे बाल ब्रह्मचारी।

हनुमान,भीष्म,शंकर, वह देश कौन–सा है ?
विद्वान, वीर योगी, गुरु राजनीतिकों के।
श्रीकृष्ण थे जहाँ पर वह देश कौन–सा है?
विजयी बली जहाँ के बेजोड़ शूरमा थे।
गुरु द्रोण, भीम, अर्जुन, वह देश कौन–सा है?
जिसमें दधीचि, दानी हरिचन्द, कर्ण–से थे।
सब लोक का हितैषी वह देश कौन–सा है?
वाल्मीकि, व्यास ऐसे जिसमें महान् कवि थे।
श्रीकालिदास वाला वह देश कौन–सा है ?
निष्पक्ष न्यायकारी जन जो पढ़े–लिखे हैं।
वे सब बता सकेंगे वह देश कौन–सा है?
छत्तीस कोटि भाई सेवक सपूत जिसके।
भारत सिवाय दूजा वह देश कौन–सा है?

❖❖❖

दूर बहुत रहते हो तुम

- केसरी नाथ त्रिपाठी

दूर बहुत रहते हो तुम,
पर आती होगी याद, हमारी।
जब–जब दर्पण झाँका होगा,
तुम अपने को ढूँढ़ न पाये।
कभी महकती, कभी चहकती,
झलकी होगी याद हमारी।
मैंने बस स्पर्श किया था,
तुम रग–रग पलाश से फूले।
प्रीति–सुगन्धित तन सरिता में–
बहती होगी, याद हमारी।
आहट, मधुर हास्य, हँसखेलियाँ–
मुद्रित होंगी, हर करवट में।
पीले, बिसरे हर पन्नों में–
बिखरी होगी, याद हमारी।
सम्प्रेषण की वायु–तरंगों से–
कुछ मन की बातें कहना।
जब खोली होंगी मन की गाँठें,
सुलझी होगी, याद हमारी।

❖❖❖

रीझ गया यौवन

- शिव भजन कमलेश

मधुर–मन्दिर सौंदर्य तुम्हारा खिला अल्हड़ी तन।
इतना तुम पर चोरी–चोरी रीझ गया, यौवन।।

अब तो अन्तस्तल में प्रिय की छवि उतरी होगी,
अनायास ही, प्रीति–भर छलकी गगरी होगी।
नयन–झील में सपन सलोने तैर गए होंगे,
और गुलाबी देह तुम्हारी फिर सिहरी होगी।

अँगड़ाई को सह न सकी होगी, दुबली, सीवन।
इतना तुम पर चोरी–चोरी रीझ गया यौवन।

प्रेम–गीत की मधुरिम धुन पर पैर नचे होंगे।
दरपन में मुख चूम–चूम कर होंठ रचे होंगे।
नए–नए परिधान और आभूषण कितने ही,
एक–एक कर उतरे होंगे, जो न जँचे होंगे।

छुअन तुम्हारी पा कर, पगलाया होगा उबटन।
इतना तुम पर चोरी–चोरी रीझ गया यौवन।

मधुकर–मिलन के लिए हृदय में चाह रही होगी।
मादकतावश, व्याकुलता की चुभन सही होगी।
दृश्य बसन्ती, फगुनाया संसार लगा होगा।
सखियों से ही अपने मन की बात कही होगी।

होठों पर, प्रिय–हेतु सजे होंगे मृदु–सम्बोधन।
इतना तुम पर चोरी–चोरी रीझ गया यौवन।

❖❖❖

चलते रहना ही जीवन है

- बी.डी. सिंह

जो उठे, गिरे पर थके नहीं, पग बढ़ा किये पथ पर चलते।
मंजिल तक वे ही पहुँचे हैं, जो थमे नहीं चलते–बढ़ते।
चलते रहना ही जीवन है, हम इसे जिये बढ़ते–चलते।।
हो सोच सकारत्मक जिनकी, तन थके नहीं ढलते–ढलते।
पग आस्था साथ बढ़े पथ पर, तो लक्ष्य मिले चलते–बढ़ते।
चलते रहना ही जीवन है, हम इसे जिये बढ़ते–चलते।।
हो श्रवणशक्ति, पर सुने नहीं, क्यों पकें कान उनके सुनते।
सुनकर भी जो अनसुनी किये, पथ भ्रष्ट हुये छलते–छलते।
चलते रहना ही जीवन है, कुछ भला करें बढ़ते–चलते।।
आँखों वाले देखते नहीं, क्यों ज्योति मिटी लखते–लखते।
ठोकर खाकर वे ही गिरते, जो लखें न पथ चलते–बढ़ते।
चलते रहना ही जीवन है, हम इसे जिये बढ़ते–चलते।।
है, कर्मधर्म, हम करें काम, सब काम सधें करते–करते।
जो रहे प्रतीक्षारत बैठे, रह गये हाथ अपने मलते।
चलते रहना ही जीवन है, हम इसे जियें बढ़ते–चलते।।
संकल्प शक्ति दे चलने की, उत्साह बढ़े चलते–बढ़ते।
कैलाश शिखर पर जा पहुँचे, जो थके नहीं चढ़ते–चढ़ते।
चलते रहना ही जीवन है, हम इसे जियें बढ़ते–चलते।।
छल दम्भ, द्वैष, पाखण्ड, झूठ में व्यक्ति सना सपने बुनते।
सब हाथ पसारे जाते हैं, अपने को ही छलते ठगते।
चलते रहना ही जीवन है, हम इसे जिये बढ़ते–चलते।।
गौतम, गाँधी की राह गहें, सुख–शान्ति मिले जीवन जीते।
अन्यथा मिटेगी मानवता, आतंकवाद सहते–सहते।
चलते रहना ही जीवन है, हम इसे जिये बढ़ते–चलते।।
है, बना व्यक्ति से वस्तु व्यर्थ, बाजार बीच बिकते–बिकते।
फिर भी अवसर है गहें बाँह, कुछ नेकी की चलते–चलते।
चलते रहना ही जीवन है, हम इसे जियें बढ़ते–चलते।।
सब जियें, अन्य को जीने दें, कह रहा विश्व डरते–डरते।
हम परहित में जीवन जीते, भारतवासी चलते–बढ़ते।
चलते रहना ही जीवन है, हम इसे जिये बढ़ते–चलते।।

❖❖❖

दम उस में है, कहाँ यारों

- डॉ. दीप बिलासपुरी

जहां वालों से अब अच्छी नहीं, नजदीकियाँ यारों।
करेंगे कद्र, तुम जितनी रखोगे, दूरियाँ यारों।

पटकता था अखाड़े में कभी जो सूरमाओं को,
अब इक तिनका उठाने का दम उस में है, कहाँ यारों।

वफा की छाँव में जिनको, दिया था, आसरा मैंने,
वही दिल के शजर पे अब चलावें आरियाँ यारों।

दिखा बैठा उसे शीशा, खता, ये हो गई, मुझसे,
हर–इक से वो लगा करने मेरी रुस्वाईयाँ यारों।

बड़े ही प्यार से जिनको दिया था, आसरा मैंने,
मुझी से अब लगे करने, वही मक्कारियाँ यारों।

खिलाफे–खुदकुशी था जो न जाने क्या हुआ उसको,
मरा इक दिन वही, खाकर, नशीली–गोलियाँ यारों।

करे कुर्बान जो हक की डगर पे जिन्दगी अपनी,
मिलेगा अब भला ऐसा बशर तुमको कहाँ यारों।

किसी के दर्द को अपना समझता अब नही कोई,
दिलों में अब कहाँ बाकी रही हमदर्दियाँ यारों।

हमारी राह में बोने लगा काँटें वहीं, देखो,
किया जिस शख्स पर हमने सदा गुलबारियाँ यारों।

अमानत में खियानत हो रही है, अब धड़ल्ले से,
किसी की चीज लौटाया नहीं, कोई यहाँ यारों।

किए थे जिस बशर के वास्ते सुख–चैन सब कुर्बां,
वही करता फिरे अक्सर मेरी रुस्वाईयाँ यारों।

❖❖❖

उपवन सूखा है!

- डॉ. ब्रह्मजीत गौतम

पावस में भी मेरा उपवन सूखा है।
पूरी आयु बिता दी बाग सजाने में,
बहुरंगी फूलों की पौध लगाने में।
किंतु न कोई कली खिली,अंकुर फूटा,
केवल नागफनी उपजी हर खाने में।
इसलिए तो आज हृदय यह दूखा है,
पावस में भी मेरा उपवन सूखा है।
मौसम बीते, नये–नये माली आये,
पुरवैयों के दौर चले, बादल छाये।
कितनी ही सरितायें पर्वत ने छोड़ीं,
किंतु राह में स्रोत सभी के भरमायें,
हर कलिका का रूप तभी तो रूखा है।
पावस में भी मेरा उपवन सूखा है।
घूम रहे हैं, अजगर, पग–पग,डगर–डगर,
क्या पानी,क्या हवा,सभी में घुला जहर।
फंगस और दीमकों का साम्राज्य हुआ,
उपवन की हरियाली पर है, लगी नजर,
हर पौधा असहाय, मर रहा भूखा है।
पावस में भी मेरा उपवन सूखा है।
डाल–डाल पर अंधे उल्लू बोल रहे,
चमगादड़ भी अनियंत्रित हो डोल रहे।
कोयल, मोर,चकोरों के स्वर मौन हुए,
चील, गिद्ध, कौए निज पंजे खोल रहे,
पेड़–पेड़ बन कर रह गया बिजूखा है।
पावस में भी मेरा उपवन सूखा है।

❖❖❖

कुछ मुक्तक

- कमल किशोर भावुक

वाटिका के हर सुमन में हास जिसका,
वक्त का हर एक क्षण तक दास जिसका।
कर रहा हूँ, अर्चना, उस ब्रह्म की, मैं,
विश्व के परमाणुओं में वास जिसका।

श्लथ कभी भी कर्म का स्यन्दन नहीं होगा,
यातना से डर, करुण क्रन्दन नहीं होगा।
पन्थ दुर्गम तो मुझे स्वीकार है, लेकिन–
चाटुकारों–सा चरण–वन्दन नहीं होगा।

सुखों की राजधानी से निकाला भी रहा हूँ,मैं,
मगर कुछ भी रहा हो, हाँ! निराला ही रहा हूँ, मैं।
लिये संकल्प का सम्बल, भले प्रतिकूल धाराएँ,
अँधेरा पी रहा हूँ, मैं,उजाला जी रहा हूँ, मैं।

क्या गन्तव्य मिलेगा जब अभिलाषा बदला करती है,
समाधान क्या होगा जब जिज्ञासा बदला करती है।
गिरगिट–सा व्यवहार व्यक्ति का,क्या विश्वास किया जाए,
आए दिन जब निष्ठा की परिभाषा बदला करती है।

भाग्य से जो भी मिला, हँसकर सहेंगे, हर समय,
हों भले ही गर्दिशें, मिलकर रहेंगे, हर समय।
कारवां हो मुश्किलों का या अभावों का सफर,
भूख को हम भीख से बेहतर कहेंगे हर समय।

व्यक्ति का व्यक्तित्व गढ़ती मुश्किलें,
रक्त के सम्बन्ध पढ़तीं मुश्किलें।
जब भगीरथ–सा कभी संकल्प जन्मा,
रेत पर मुस्कान मढ़तीं मुश्किलें।

❖❖❖

कलिकाल

- रामदेव लाल 'विभोर'

आज की गंगा–धूमिल धार,
संग ले व्यथा–कथा–विस्तार।
बिलख कर कहे सुनो, भगवान,
अत्यधिक हुआ,पाप का भार।

गया, सतयुग–सद्वृत्ति–विचार,
रामजी का त्रेता–अवतार।
विगत है, द्वापर केशव–काल,
चल रहा कलियुग का व्यापार।

नहीं अब रहे, भगीरथ भूप,
नहीं संसृति की छटा अनूप।
चतुर्दिक तना खड़ा कलिकाल,
बनाये विकट विधर्मी रूप।

कहाँ तक करूँ पाप का नाश,
कहाँ तक सुरभित करूँ सुवास।
विषैले कीचड़ ने कर दिया,
प्रवाहित जल का सत्यानाश।

प्रदूषण गति में आठों याम,
विधाता बैठा अपना वाम।
सुपथ का धूमिल हुआ प्रकाश,
सुजन को मिले न कोई काम।

हो रहा, प्रतिपल हाहाकार,
कर्म–पथ पर काँटों का द्वार।
रो रहा, सज्जन कंठ उभार,
कर रहा, दुर्जन अत्याचार।

युगल तट म्लानमुखी गतिहीन,
पंक ने ली गहराई छीन।
दमकती सुभग प्रबल मँझधार,
बन गई दुर्बल आभाहीन।

❖❖❖

गजल

- राजेन्द्र वर्मा

1

या तो जमीं पे चाँद–सितारों को लाने दे,
या फिर उन्हीं की छाँव में दुनिया बसाने दे।

हमको तो काम है तो चिरागां से काम है,
चाहे जहाँ से आएँ, चिरागों को आने दे।

धन का खजाना जाता है, तो जाने दे, उसे,
दिल का खजाना आखिरी दम तक न जाने दे।

दो–चार पल को ही सही, दीवानेपन को जी,
दिल गुनगुनाना चाहता है, गुनगुनाने दे।

यह देह सिर्फ देह नहीं, एक साज है,
साँसों के तार साध ले, सरगम को आने दे।

2

गोलियाँ खाता जो सरहद–पार है,
उसको भी अपने वतन से प्यार है।

दूसरों को जीतना मुश्किल जरूर,
खुद को लेकिन जीतना दुश्वार है।

आप मानें या मानें, सच यही,
झूठ को भी सत्य की दरकार है।

मेरी स्मृति में आप रहते हैं,सदा,
विस्मरण का आपको अधिकार है।

हाँ,अगर इन्सानियत की जीत हो,
मुझको अपनी हार भी स्वीकार है।

❖❖❖

उठो भाई उठो

– श्रीधर पाठक

हुआ सवेरा जागो भैया,
खड़ी पुकारे प्यारी मैया।
हुआ उजाला छिप गए तारे,
उठो मेरे नयनों के तारे।
चिड़िया फुर–फुर फिरती डोलें,
चोंच खोलकर चों–चों बोलें।
मीठे बोल सुनावे मैना,
छोड़ो नींद, खोल दो नैना।
गंगाराम भगत यह तोता,
जाग पड़ा है, अब नहीं सोता।
राम–राम रट लगा रहा है,
सोते जग को जगा रहा है।
धूप आ गई, उठ तो प्यारे,
उठ–उठ मेरे राजदुलारे!
झटपट उठकर मुँह धुलवा लो,
आँखों में काजल डलवा लो।
कंघी से सिर को कढ़वा लो,
औ' उजली धोती बँधवा लो।
सब बालक मिल साथ बैठकर,
दूध पियो खाने का खा लो।
हुआ सवेरा जागो भैया,
प्यारी माता लेय बलैया।

❖❖❖

मामी निशा

- राम नरेश त्रिपाठी

चंदा मामा गए कचहरी, घर में रहा न कोई,
मामी निशा अकेली घर में कब तक रहती सोई।

चली घूमने साथ न लेकर कोई सखी–सहेली,
देखी उसने सजी–सजाई सुंदर एक हवेली।

आगे सुंदर, पीछे सुंदर, सुंदर दाएँ–बाएँ,
नीचे सुंदर, ऊपर सुंदर, सुंदर सभी दिशाएँ।

देख हवेली की सुंदरता फूली नहीं समाई,
आओ नाचें उसके जी में यह तरंग उठ आई।

पहले वह सागर पर नाची, फिर नाची जंगल में,
नदियों पर नालों पर नाची, पेड़ों के झुरमुट में।

फिर पहाड़ पर चढ़ चुपके से वह चोटी पर नाची,
चोटी से उस बड़े महल की छत पर जाकर नाची।

वह थी ऐसी मस्त हो रही आगे क्या गति होती,
टूट न जाता हार कहीं जो बिखर न जाते मोती।

टूट गया नौलखा हार जब, मामी रानी रोती,
वहीं खड़ी रह गई छोड़कर यों ही बिखरे मोती।

पाकर हाल दूसरे ही दिन चंदा मामा आए,
कुछ शरमा कर खड़ी हो गई मामी मुँह लटकाए।

चंदा मामा बहुत भले हैं, बोले–'क्यों है रोती',
दीवा लेकर घर से निकले चले बीनने मोती।

❖❖❖

चतुर चित्रकार

- राम नरेश त्रिपाठी

चित्रकार सुनसान जगह में, बना रहा था चित्र,
इतने ही में वहाँ आ गया, यम राजा का मित्र।

उसे देखकर चित्रकार के तुरत उड़ गए होश,
नदी, पहाड़, पेड़, पत्तों का, रह न गया कुछ जोश।

फिर उसको कुछ हिम्मत आई, देख उसे चुपचाप,
बोला–सुंदर चित्र बना दूँ, बैठ जाइए आप।

डकरू–मुकरू बैठ गया वह, सारे अंग बटोर,
बड़े ध्यान से लगा देखने, चित्रकार की ओर।

चित्रकार ने कहा–हो गया, आगे का तैयार,
अब मुँह आप उधर तो करिए, जंगल के सरदार।

बैठ गया पीठ फिराकर, चित्रकार की ओर,
चित्रकार चुपके से खिसका,जैसे कोई चोर।

बहुत देर तक आँख मूँदकर, पीठ घुमाकर शेर,
बैठे–बैठे लगा सोचने, इधर हुई क्यों देर।

झील किनारे नाव थी, एक रखा था बाँस,
चित्रकार ने नाव पकड़कर, ली, जी भर के साँस।

जल्दी–जल्दी नाव चला कर, निकल गया वह दूर,
इधर शेर था धोखा खाकर, झुँझलाहट में चूर।

शेर बहुत खिसियाकर बोला, नाव जरा ले रोक,
कलम और कागज तो ले जा, रे कायर डरपोक।

चित्रकार ने कहा तुरत ही, रखिए अपने पास,
चित्रकला का आप कीजिए, जंगल में अभ्यास।

❖❖❖

मैं कहूँगी कथा

- सविता सिंह

विश्व की स्त्रियों–
बार–बार मैं तुम्हारी कथा कहूँगी।
उतरूँगी जीवन की अँधेरी खोह में,
दूर तक बढ़ूँगी,
पहुँचूगी वहाँ, जहाँ तक थोड़ी भी रोशनी
बाकी होगी।
देखूँगी तुम्हारे प्राचीन चेहरे
जो अब तक दस्तावेजों की तरह सुरक्षित होंगे वहाँ,
उनसे ही जान लूँगी तुम्हारा हाल–
और यह भी समझ लूँगी कि बहुत फर्क नहीं है
एक–दूसरे के हाल–चाल में अब भी।
अब भी दुख में वही स्थिर ललाट है।
मोमबत्तियों–सी जलती हैं अब भी वैसी ही आँखें,
जिन्होंने देखे न जाने कितने षड़यंत्र।
झूठ और अनाचार विकसित होती दुनिया की तमाम सभ्यताओं में–
जिम्मेदारियों और बेहताशा श्रम से झुकी वैसी ही पीठ
और शर्म में गड़ी वही गरदन,
अस्त–व्यस्त वैसे ही केश जिन्हें बाँधने का स्वाँग,
हर सदी में हम सबों ने किया।
होठ पर मृत पड़े जीवन के वही पुराने गीत,
जिन्हें एक समय हम सबने झूम–झूम कर गया था।
विश्व में जब बहुत कुछ हमारा था,
विश्व की स्त्रियों तुम जहाँ कहीं भी हो,
जिस समय जिस सदी और जिस देश में,
तुम्हें अपने पूर्वजन्म–सा मैं कविता में पा लूँगी–
क्योंकि बार–बार मैं ही थी जन्म लेती बन कर कभी–
सुप्रिया, सबीहा, मारगरीटा, सिमोन, अख्मतोवा,
पूर्वजन्म की इससे अच्छी व्याख्या और क्या हो सकती है
कि हम बार–बार अपने को पा लें खो जाने के बावजूद।
एक सदी से दूसरी में,
एक देश से दूसरे देश में
और अपने होने की इस लंबी त्रासद कथा
को कह कर–
बार–बार किसी सुंन्दर मोड़ तक पहुँचाएँ।

❖❖❖

परिभाषा

- कात्यायनी

प्यार–
एक चिंदी पर दर्ज,
पीड़ित अंतः करण के
आयतन की
नाप।

क्षण
तब चुप्पी
हल्की पीली धूप–सी होती है।
और क्षितिज हमारा हृदय,
कुछ देर के लिए,
काँच की सतह बन जाती है–
पानी की परत,
बर्फ सफेद चादर
और पारे की तरह भारी जिंदगी।
उड़ते कपास जैसी,
समय ईंधन होता है।
कठिनाइयों को ठेलकर किनारे करने में
खर्च होने के लिए–
या उम्मीद की लौ के जलने में।

चाहत
खामोश उदास घंटियों के–
बज उठने की सहसा उपजी ललक,
घास की पत्तियों का
मद्धम संगीत,
रेगिस्तान में गूँजती–
हमें खोज लेने वाले की विस्मित पुकार।
दहकते जंगल में
सुरक्षित बच रहा,
कोई नम हरापन,
यूँ आगमन होता है–
आकस्मिक
प्यार का।
शुष्कता के किसी यातना शिविर में भी
और हम चौंकते नहीं।
क्योंकि हमने उम्मीदें बचा रखी थीं–
और अपने वक्त की तमाम–
सरगर्मियों और जोखिम के–
एकदम बीचो–बीच खड़े थे।

उपस्थिति
प्यार है फिर भी
जीवित हठ की तरह,
जैसे इतने शत्रुतापूर्ण माहौल में–
कविता,
जैसे इतनी उदासी में
विवेक।

समझ
हिरन हुए कम,
वन चरें समझ–बूझ के साथ,
यात्राएँ योजना बना कर के,
युद्ध रणकौशल से लड़ें,
चीजों को जानने में
पूरी समझदारी बरती
और तमाम नासमझियाँ बचाए रखीं।
प्यार के विरल,
अल्पकालिक,
अप्रत्याशित,क्षणों के लिए।

एहसास
सोचा हर बार पूरे स्वार्थ के साथ–
उन अनुभूतियों को,
अपने लिए बचा–छिपा लेने के बारे में,
रिसती रहीं वक्त–बेवक्त।
सपनों के पोरस बरतन से
कविता में,
और फिर तंग आकर हम
उन्हें बयान करते रहे
अपने लोगों के बीच
और अनसुने रहे,
अनकहे–से।

❖❖❖

स्मृतियाँ

जैसे कभी द्वार खोलते समय–
लापरवाहीवश,
उँगली छिल जाती है।
ऐसे भी कभी लगती हैं खरोंच–
मन के भीतर भी।
और स्मृतियाँ
छिटक पड़ती हैं,
जैसे मटर के ढेर पर।
किसी के फिसलने से मटर।
आँगन के सूने कोने में
चेहरा छिपाने के लिए,
भाग खड़ा होता है समय।
कहीं कोई पढ़ न ले
इतने निशान।
यहाँ तो सरसों ही
अधिक भली है।
जिसे बिखेरने से ज्यादा
बटोरने में
अधिक सुख मिलता है।

ओ प्रिय

- विद्याविन्दु सिंह

ओ प्रिय
तेरी आराधना के फूल चुक गये हैं।
मोती बचे हैं, उन्हें भी बटोर ले।
और मुक्त कर दे मनों को,
सपनों के जाल, सभी के टूटते हैं,
पर किसी के कुछ ही तार
किसी का संपूर्ण छिन्न–भिन्न।
अपेक्षाएँ सबकी चुकती हैं–
किसी की सीमा में,किसी की आर–पार।
ओ प्रिय!
ऐसे सपने, अपेक्षाएँ देता ही क्यों है ?
जिस हाथ से दिया, उसी से समेट ले–
और कर दे जीवन सरल।
व्यक्ति का व्यक्तित्व बच जाये चुकाने से
आस्था का रत्न रह जाय लुटने से।
ओ प्रिय!
अपनी आजानुबाँहों का
उपयोग याद कर ले।
अपनी बाँसुरी का जादू विस्तार कर दे।
अपनी मोहक हँसी बिखेर दे धरती पर,
ओ प्रिय!

❖❖❖

दुल्हन घर पिया के जाती है

- श्रीमती पुष्पा 'सुमन'

प्यार की कोई कोयल जब चहक के गाती है,
आसमां से ओलों के तब इनाम पाती है।
तोड़ता है खुद माली यह अजब तमाशा है,
जब चमन में कोई कली ज्यादा खिलखिलाती है।
देवता हैं या दानव इसको क्या खबर होगी,
प्यार की नदी सी दुल्हन, घर पिया के जाती है।
और से शिकायत क्या जबकि एक औरत ही–
बेरहम हो, औरत की अर्थियाँ सजाती हैं।
आँधियों से क्या लड़ना, क्या गिला अँधेरों से,
प्रीति का दिया ऐसा, तेल है न बाती है।
कुछ वफा के वादे हैं, कुछ सफर की कसमें हैं,
यूँ नहीं कोई सरिता, सिन्धु में समाती है।
शब्द–शब्द में तुझको मैंने बाँध रखा है,
मेरी हर गजल 'पुष्पा' तुझको गुनगुनाती है।

जुड़ा रहने दो
राम को और खुदा को रहने दो,
गाँव में सभ्यता को रहने दो।
दम न घुट जाये कहीं नफरत से,
प्यार वाली हवा को रहने दो।
नीम की छाँव है बहुत ठण्डी,
इसको आँगन में खड़ा रहने दो।
दूधिया मरकरी उजाले में,
एक दीपक को सदा रहने दो।
आइना असलियत बता देगा,
अपनी आँखों को खुला रहने दो।
सिर्फ खुद को सुधार कर देखो,
सारी दुनिया का भला रहने दो।

दिल के पिंजरे में मोहब्बत का सुआ,
आ गया है तो पला रहने दो।
एक गुलशन के 'सुमन' हैं 'पुष्पा',
ये जो रिश्ता है, जुड़ा रहने दो।
चराग जलने दो
शेर को आँसुओं में ढलने दो,
दर्दे–दिल को गजल में पलने दो।
तुम भी पीकर के लड़खड़ाओगे,
जो गिरे हैं उन्हें सँभलने दो।
रात भर की उमर मिली इसको,
जैसे चाहे चराग जलने दो।
लोग चेहरे नहीं बदल पाये,
अब इन्हें आइने बदलने दो।
तुम न निकलो शहर की सड़कों पर,
हादसा टल रहा है, टलने दो।
इन अँधेरों से काँपना कैसा,
एक सूरज कहीं निकलने दो।
प्यार का बुत भी हम बना लेंगे,
पहले पत्थर को तो पिघलने दो।
ये पखेरू जमीं पे आयेंगे,
आसमाँ छल रहा है, छलने दो।
जिन्दगी रास्ता बना लेगी,
नफरतों का पहाड़ गलने दो।
मुझको तुम हमसफर नहीं कहना,
बस अपने साथ–साथ चलने दो।
स्वप्न के फल जरूर कड़वे हैं,
'पुष्पा' इनको चमन में फलने दो।

❖❖❖

फिर जो, फिर गये वे दिन

- सुरेन्द्र पाण्डेय रज्जन

बुरे थे या भले थे वे,
फिरे जो, फिर गये वे दिन।
नहीं घड़ियाँ रहीं बेवस,
नहीं वे शेष हैं,पल–छिन।
कहें हम रीतियाँ किनको,
कहें परतीति अब किसको?
करें विश्वास हम जिन पर,
वही अब कह रहे–खिसको।
ढली है, उम्र ही अपनी ,
कटी है, जिन्दगी सारी।
तमन्ना अब न कोई है,
पड़े, क्षण–क्षण हमें भारी।
अभी भी शेष हैं, कुछ तो,
जिन्हें अब काटते गिन–गिन।
बुरे थे या भले थे वे,
फिरे जो, फिर गये वे दिन।
नहीं आसक्ति है, मन में,
नहीं आसक्ति है, तन से।
अगर कुछ शेष है, बाकी,
तो है, अभिव्यक्ति जन–जन से।
शिकायत है, अगर कुछ तो,
शिकायत है, स्वयं मन से।
दिखाता बिम्ब जो धुँधले,
शिकायत है, न दर्पण से।
दबा एहसास से 'रज्जन',
गिना पाऊँ न, हैं अनगिन।
बुरे थे या भले थे वे,
फिरे जो, फिर गये वे दिन।

❖❖❖

तुम्हीं प्यार मेरा

- योगेश प्रवीन

तुम्हारे लिए नैन बेचैन मेरे,
तुम्हीं कामना हो तुम्हीं प्यार मेरा।
सुमन मेरे मन का और आँचल तुम्हारा,
कहीं खो न देना, ये उपहार मेरा,

वो दिल क्या किसी का जिसे गम नहीं है,
है, सूखी नदी, आँख जो नम नहीं है।
मुहब्बत की दौलत भी कुछ कम नहीं है,
तुम्हारी तमन्ना मेरी जिन्दगी है।
तुम्हारे ही दम से है, संसार मेरा।
कहीं खो न देना, ये उपहार मेरा।

बसे, तन की बंसी में, हो, साँस बनकर,
मेरी आस और मेरा विश्वास बनकर।
रहो, मन के उपवन में, मधुमास बनकर,
महक प्यार की दे दूँ, तेरे बदन को।
निमन्त्रण करो तुम जो स्वीकार मेरा।
कही खो न देना, ये उपहार मेरा।

मिलो तुम तो अपना मुकद्दर बना लूँ,
सितारों के झुरमुट में एक घर बसा लूँ।
मैं खुद अपनी धरती को अम्बर बना लूँ,
प्रतीक्षा करूँगा मैं, जब तक कहोगे।
मगर मुझसे छीनो न अधिकार मेरा।
कहीं खो न देना ये उपहार मेरा।

❖❖❖

क्या खूब इशारा था

- सुश्री वर्षा सिंह

सुनते हैं सदी पहले कुछ और नजारा था,
इस रेत के दरिया में पानी था, शिकारा था।
रिश्तों से, रिवाजों से, बेखौफ हथेली पे,
जो नाम लिखा मैंने, वो नाम तुम्हारा था।
मुद्दत से मुझे कोई, बेफिक्र न मिल पाया,
हर शख्स की आँखों में चिन्ता का पिटारा था।
हैरान अब न होना, आँधी जो चली आई,
खामोश उदासी ने हलचल को पुकारा था।
थक हार के लोगों ने, चर्चा ही बदल डाली,
समझा न कोई कुछ भी, क्या खूब इशारा था।
जिस रात की आँखों में मैं झाँक नहीं पाई,
उस रात की आँखों का हर ख्वाब सितारा था।
मर–मर के बिताई है 'वर्षा' ने उमर सारी,
कहने को हर इक लम्हा,जी–जी के गुजारा था।
झुलस रही है चाँदनी
जहाँ पे आज रेत है, वहाँ पे थी नदी कभी,
जले थे, घाट पर दिए, हुई थी रोशनी कभी।
पता जहाँ का था लिखा,खयालों की किताब में,
वो शाम आज तक वहाँ, मुझे नहीं मिली कभी।
कहानियों में है सुना कि आँधियों में टूट कर,
गिरे हैं फूल जिस जगह, वहीं थी जिन्दगी कभी।
हवाएँ बदहवास–सी, हँसी के चिन्ह ढूँढ़ती,
दुखों की छाँव है वहाँ,बसी जहाँ खुशी कभी।
उदासियों से दोस्ती,न चाहते भी हो गई,
न राह पहले एक थी,न एक थी गली कभी।
यहाँ न 'वर्षा' बिजलियाँ, झुलस रही हैं, चाँदनी,
वहाँ हैं चुप्पियाँ, जहाँ बजी थी, बाँसुरी कभी।

❖❖❖

परिन्दों सी दुनिया

– कुसुम वर्मा 'कृष्ण'

परिन्दों सी दुनिया हमारी भी होती
सितारों की मंजिल हमारी भी होती
मंदिर से उड़ते तो मस्जिद पे रुकते
भावनाएं हमारी प्रदूषित न होतीं
छोटा सा प्यारा घर हमारा भी होता
भूकम्प और बाढ़ का खतरा न होता
खुश रहते हम भी सदा चहचहाते
संदेशा प्यार का सबको सुनाते
रोटी और बेटी का झगड़ा न होता
भाई–भाई का दुश्मन न होता
मोटी किताबों से पीछा छुड़ाते
ऊँचे गगन में फुर्र से उड़ जाते
जिम्मेदारियों की दुहाई न होती
अपनी ही बेटी पराई न होती
निश्छल मन इनका कोमल तन इनका
धरती पर ये वहशियाना न होता
धोखे का ऐसा जमाना न होता
अपनपा हम सफर बेगाना न होता
अपनों में अपनी रुसवाई न होती
दुनिया में इतनी बुराई न होती
इंसान में कुछ तो खुदाई होती।

❖❖❖

चाँद शिशु

- डा. शांति देवबाला

शीतल चाँदनी से भरे आकाश में,
तारे मुस्करा कर सो गये।
बादल यह नन्हें चंचल, मुन्ने,
दौड़–दौड़ झीने हो गये।
हवा चल रही साँस सी सहज ,
प्राणों की डोर लिये सरसरी ध्वनि सी।
चंदा का पालना झुलाती,
तारों ढँकी चादर उढ़ाती,
मन्द–मन्द सी लोरी गाती,
दुलराती सवाँरती थपक सुलाती।
चाँद जैसे कोई नन्हा शिशु,
गोल–मटोल, गदराया, सुन्दर,
हँसता, थिरकता पालने में झूलता,
झाँक–झाँक देखता, पलक मूँदता।
मेघों के गुड्डे–गुड़िया, परियों के छौने हैं,
रंग–रूप बदल रहे मस्त से खिलौने हैं।
मायावी रूप धरे शावकों से कूदते,
लाँघते–उलाँघते, कुलाँचे–कुदकते,
चाँद को बहलाते, घेर–घेर गाते।
चाँद इन्हें देखता, नयन खोलता,
पालने में पलट डोलता,कहता–
रात बहुत उजली है, सोऊँ कैसे,
शीतल अँधियारा हो तो सोऊँ।
चाँद को चाँदनी में नींद नहीं आ रही।

❖❖❖

हाइकु

- सरला साहू

सावन आया
सरसी हरियाली
बदली काया।

उमड़ चली
घनघोर घटायें
बरस चलीं।

धरा सुन्दरी
पहिने धानी साड़ी
खूब निखरी।

कड़की कर्का
घनघोर अंधेरा
मन डरपा।

प्यार जतायें
मधु लोभी भँवरें
गीत सुनायें।

मिटाना होगा
धरा से अवसाद
आतंकवाद।

देश के नेता
सत्ता के लिए लड़ें
नादान बड़े।

बूँद–बूँद से
गागर है, भरती
हो जाती रीती।

तुम्हें मिलेगा
मेहनत का फल
आज या कल।

जीवन भर
सुख के पीछे भागे
प्राणी अभागे।

❖❖❖

अहसास

- रचना शुक्ला

शायद हर घर की रोशनी–
रात में बुझ जाती है,
दिन में जल जाती है,
सुबह सुलग जाती है,
शाम दहक जाती है,
अहसास की चादर सिलवटों से भरी है।
शायद दिल के बोझ तले–
दबकर 'प्रेस' हो जाए।
उस आँख में कितने आँसू थे जो रो न सकी ।
कितनी रातें बितायी –
उस बिरहन ने–
जिसे कोई सन्देश न मिला।
कितने सवाल थे जिनके जवाब कलम ने उगले नहीं।
तो फिर क्या बड़ी बात हुई–
जो हम–
जी न सके साथ,
मर न सके साथ।

❖❖❖

बँटवारा

- श्रीमती सुनीता यादव

आज इकट्ठा है,पूरा परिवारा,
धन दौलत का होगा,बँटवारा।
ये तू ले ले,ये है तेरा,
यह मुझे मिले,ये मेरा।
किसको कितना ज्यादा मिले,हमारा,
सब बेटे एक जुट हो करें,बिचारा।
खेत–खलिहान बँट गए,अब गायों की बारी,
बछिया गायों से पूछें, अब होंगे हम न्यारी ।
सब कुछ बँट गया, अब माँ–पिता की तैयारी,
छः महिना पिता तुम्हारा,छः महिने माँ हमारी।
महिने–महिने बाँटे जा रहे,
हम पाँच–पाँच पाले।
तुम से दो नहीं पाले जा रहे।।
दादा और मुन्ने की बाती,
बुढ़ापा–बचपन का साथी ।
छोटे का नाती बोला, दद्दू मेरे हिस्से में आए।
फूटा, चिरौंजी और बत्तू लाए।
दादा–दादी मुझको दे दो,
बाकी सब तुम ले लो।
दादी लोरी सुनाएगी।
दादा की ताली गीत गायेगी।
वे देंगे ढेरों, आशीर्वाद, सुपथ पर चलने की सीख,
तुम सब दौलत के भिखारी, मुझे मिले अपनो की भीख।
मुझको माँ ने यह सिखाया,
बार–बार यह जताया।
बुजुर्गों की जो सेवा करता,
वो मुसीबत से नहीं डरता।
हर सुख उसके होते, हर खुशी उसे मिल जाती,
जीवन जीने को मिलता, जिंदगी नहीं भटकाती।
मैंने विचारा तुम भी विचारो।
अपनों को बँटवारे में न डारो।

❖❖❖

पिता

- लक्ष्मी शर्मा

मेरे पिता
तुम मेरे जनक हो।
तुम्हीं ने इस दुनियाँ से–
कराया, मेरा परिचय,
तुम्हीं ने मेरी उँगली पकड़–
दिखाया, देहरी बाहर का संसार।
तुम्हारे सशक्त कंधों चढ़ मैंने–
दुनिया को पहचाना,
अपनी छोटी सी बुद्धि से
जैसे छू लिया आसमान ।
मेरे पिता सत्य–असत्य का तुम्हीं ने –
समझाया, अंतर,
सदा न्याय के पथ पर चलकर–
तुम्हीं ने जीवन को बनाने सफल,
ध्रुव सत्य का पढ़ाया पाठ।
मेरे पिता
तुम्हारी संघर्षशीलता,
तुम्हारी जिजीविषा,
तुम्हारा महान पुरुषार्थ,
तुम्हारी लगन, मेहनत–
करती है,ऊर्जस्वित–
मुझे पग–पग पर।
मेरे पिता
तुम्हारी मानवीय संवेदनायें–
निःस्वार्थ सेवा भाव,
करुणा,दया, प्रेम ,
हर वक्त मुझमें,
समन्वय के–
मनोभाव जगाया करते।
मेरे पिता
हर विषयों की ज्ञान की
जटिल बातें समझाते,
जिज्ञासा वश हम–
उत्सुकता भरे पूँछते रहते।
तुम्हारा अटूट प्यार–
हमें सहज बाँध लेता।
मेरे पिता
हम लोगों में तुमने दृढ़ता,
साहस, परिस्थितियों का सामना,
भारतीय संस्कृति और संस्कार–
ऐसे शिक्षित–दीक्षित किये कि
हम अपनी परम्पराओं की विरासत को–
सहेजे–समेटे हुए हैं।
तुम्हारे ऊर्जावान दिशा–दर्शन ने–
सदा मुझमें शक्ति का संचार किया ।।

❖❖❖

मन

- कुलतार कौर

मन सरोवर में है, विकसित,
प्रीत के मधुमीत शतदल।
मन के अम्बर पर बिहँसते,
कामना के दीप अविचल।

साधना का सारथी यह,
मुक्ति–मन्दिर द्वार खोले।
उस अधीश्वर तक ले जावे,
शान्त–स्थिर होले–हौले ।
स्वच्छ दर्पण सा दिखाये,
चंचला द्युति लहर संबल।
मन सरोवर में है, विकसित,
प्रीत के मधुमीत शतदल।

आकाश और पाताल कितने,
मन–मंजूषा में समाये।
कितनी धरा, कितने धरातल,
मन के वश में होते आए।
धीर है पर मन की गति है,
सिन्धु लहरों से भी चंचल।
मन सरोवर में हैं विकसित,
प्रीत के मधुमीत शतदल।।

मन अकेला कब कहाँ हैं?
संग हैं, कितनी व्यथायें।
मन बनाता है, वियोगी,
प्रेम की अभिनव सुरमित।
नेह का नवनीत कोमलद्ध
मन सरोवर में हैं विकसित,
प्रीत के मधुमीत शतदल।।
मन सजल है, मन सजग है,
विश्व वन्दित चेतना है।
शीत और ऋतुराज लाना,
मन की ही तो कल्पना है।
नयन की कामाक्षी भाषा,
दृष्टि में समाहित है, केवल।
मन सरोवर में हैं विकसित,
प्रीत के मधुमीत शतदल।।

❖❖❖

समर्पण

- डा.मिथिलेश कुमारी मिश्रा

सोए जन–जीवन को जिसने उद्‌बुद्ध किया,
जो आदि सृष्टि का एकमात्र आकर्षण है।
युग का इतिहास छिपा है, जिसके अन्तर में,
अथवा जिस पर सबका सर्वस्व समर्पण है।
जिसके मन के भावों में मचल रही गंगा,
पुलकित तन में तन्मयता प्रीति बसाती है।
खिलखिला रही कल–कल निनाद से किलकारी,
जब प्रकृति–सुन्दरी घूँघट तनिक उठाती है।
जिसकी गोदी में खेल रहे, निर्झर–समूह,
उन्मत्त–पवन रह–रह मधुरस छलकाता है।
गुदगुदी उठा करती है, प्रतिपल, सिहरन से,
प्रति रोम–रोम में अद्‌भुत राग समाता है।
कचनार–कदम्ब–कनेर–कुंद–मन्दार–सरल,
चम्पा–अशोक–अर्जुन–तमाल या पारिजात।
उत्पल–शतदल–पुन्नाग–नाग–केसर–गुलाब,
मालती लता से सदा सुसज्जित सुघर गात।
वैभव–विलास के रहे सभी सामान किन्तु,
अविचल समाधि सपने में भी क्या हुई भंग?
उर्वशी–मेनका नाच–नाचकर गयी हार,
फिर भी न कभी बिचलित था जिसका एक अंग।

❖❖❖

संत तुलसीदास

- कृष्ण कुमार वर्मा 'कृष्ण लखनवी'

धर्म का इस देश में जब ह्रास होता जा रहा था।
राह पर मानव भ्रमित होकर भटकता जा रह था।
उस समय तुलसी तुम्हारा जन्म सुखकारी हुआ था।
धर्म रक्षा, भ्रम निवारण कृत्य उपकारी हुआ था।

धर्म ग्रंथों का सुखद जब सार तुमने जान पाया।
ज्ञान गंगा में नहाकर काव्यमय उसको बनाया।
ज्ञान देकर विश्व को तुमने मनुज बनना सिखाया।
देखकर उपकार सब जग में, तुम्हें मर्मज्ञ पाया।

रम रहा सर्वत्र जो उस राम को जब जान पाया।
सन्त तुलसीदास तुमने इष्ट था उसको बनाया।
काव्यमय इतिहास तुमने राग का ऐसा बनाया।
पूज्य बन उस ग्रंथ ने सर्वोच्चतम स्थान पाया।

रागमय, अनुरागमय तुम संत वाणी दे गये हो।
और मानव मूल्य की अनमोल निधि भी दे गये हो।
हो गये तुलसी अमर तुम तो सुयश ही ले गये हो।
भक्ति भावों में सहज अनुभूति सुख की दे गये हो।

नीति राज समाज अरु परिवार की तुमने सिखायी।
प्रीति–रीति प्रतीति वह सर्वोत्कृष्ट बनी सुहायी।
कर बहुत आदर्श प्रस्तुत शान्ति सुख की विधि सिखायी।
और महिमा राम के शुचि नाम की तुमने बतायी।

है धरा वह धन्य तुमने है जहाँ पर जन्म पाया।
धन्य माँ हुलसी हुई तुलसी सदृश सुत रत्न पाया।
धन्य वह रत्ना शिरोमणि संत कवि जिसने बनाया।
स्वान्तः सुख के,सुकवि सुख के,सुख मार्ग है तुमने दिखाया।

काव्य सौष्ठव मय तुम्हारे ग्रंथ शोभागार बनते।
राम मानस के तुम्हारे सहज सुख के धाम बनते।
भक्तिमय आसक्ति मय घर–घर तुम्हारे राम रमते।
संत कवि तुलसी तुम्हें हम कोटि कोटि प्रणाम करते।

❖❖❖

बस आज ही दिन है

- शशिकांत मिश्र

प्राण हँस बलिदान कर दो, मृत्यु से अभिसार का–
बस आज ही दिन है।

भर रहा है घोर भैरव–रव जगत में अहर्निश,
आर्यकुल में शील के बन्धन शिथिल होने लगे हैं।
देखकर मनुजाद की निज धर्म–धर्मी क्रूरता,
चर–अचर के भूत–भावन रुद्र धृति खोने लगे हैं।
कर रहे, इंगित सकल मनुजाति की मनुहार का–
बस आज ही दिन हैं।

उठ रही हैं सर्वतः कालाग्नि की काली घटा,
नीति की मरुभूमि पर निज मृन्मरण बरसा रही हैं।
आ रही हैं साथ में महिषासुरों की टोलियाँ,
रक्तबीजों की भयावह, काल ध्वनि छा रही है।
लग रहा है, विश्व अम्बर से किसी अवतार का–
बस आज ही दिन है।

घिर रहा जग आज फिर वृत्रासुरों के वृत्र से,
बिप्लवी देवेश का वह कुलिश है कि मृणाल दण्डी।
धृार्तराष्ट्रों ने पुनः विभ्रंश भावों का किया है,
कृष्ण के उपदेश का धाता परन्तप या शिखण्डी?
शठ सुयोधन्,शकुनी कुल के निश्चित शर उपचार का–
बस आज ही दिन है।

शूर होते ख्यात जग में एक अरि मर्दन किये,
एक 'वृत्र' निपात करके, इन्द्र 'महेन्द्र' हो गये हैं।
वृत्ताकार जग में हो रही हैं मनुज की खलवृत्तियाँ,
अहिंस्र, करुणा, दया, मैत्री, शीलता सब खो गये हैं।
सन्धान कर, शर चाप पर, प्रतिभाव के प्रतिकार का–
बस आज ही दिन है।

❖❖❖

याद आती काकोरी

- जयराम दास रस्तोगी

लोहा गोरों से लिया, किया, विकट संग्राम।
रोशन,बिस्मिल,लाहिड़ी, थे,सब पौरुष–धाम।।
थे,सब पौरुष–धाम,याद आती, काकोरी।
झूल गये, अशफाक, चूम, फाँसी की डोरी।।
सदा रहे,आजाद, वीरगति ने मन मोहा।
अरि के थे, उद्‌गार, लिया, गोरों से लोहा।।

अर्पण निज जीवन किया, देश–प्रेम के नाम।
सबल सुभट लड़ते रहे, आजीवन निष्काम।।
आजीवन निष्काम, मुक्ति–संग्राम निराला।
खुदीराम, भगवती, भगत सिंह भागों वाला ।।
राजगुरु, सुखदेव, मृत्यु का, कर आलिंगन।
शुक्ला, शालिगराम, किया निज जीवन अर्पण।।

पावन बलिवेदी सजी, चले, वीर शालीन।
तिलक, गोखले, लाजपत, कान्हा, दत्त,जतीन।।
कान्हा, दत्त, जतीन, प्रवासी रासबिहारी।
ऊधम, परमानन्द विलक्षण भट प्रण धारी ।।
सावरकर, धींगड़ा–मदन फाँसी निर्वासन।
सूफी–अम्बा,बाबा–पृथ्वी' नाम सु–पावन।।

काया कृश दृढ़ता अटल, जन गण पर विश्वास।
जीवन भर संघर्ष रत,गाँधी–मोहन दास।।
गाँधी–मोहन दास, सत्य करुणा व्रत धारी ।
अनय दमन का शमन, अहिंसा की बलिहारी।।
अरि–प्रति परम विनीत, रहा,सद्‌भाव समाया।
थे, सिद्धान्त प्रतीक, नहीं, केवल कृश काया।।

❖❖❖

गजल

- रमन लाल अग्रवाल 'रमन'

निगाहें तमन्ना, किधर जा रही हैं,
जिधर आप हैं, ये उधर जा रही हैं।

मोहब्बत की दुनिया में आकर तो देखो,
कहाँ से कहाँ तक नजर जा रही है।

खुदाई के जलवे नजर आ रहे हैं,
जिधर भी हमारी, नजर जा रही है।

नजर को मैं, अब, अपनी इल्जाम क्या दूँ,
जिधर था,न जाना, उधर जा रही है।

है, खौफ भी, आज, 'रमन के दिल में,
मेरी जिन्दगी, यूँ, गुजर जा रही है।

2

जिन्दगी, आप के कदमों पे, निछावर कर दूँ,
काम मुश्किल है, मगर, आज ये, दिलवर कर दूँ।

मैं तो बस प्यार के खातिर ही हुआ हूँ, पैदा,
मजहब–व–जात का फर्क, आज बराबर कर दूँ।

दे दिया, रब ने,मोहब्बत को, इबादत का खिताब,
मैं, इस एलाने इलाही को,उजागर कर दूँ।

सब को अल्लाह ने, इंसान बनाकर भेजा,
एक माँ बाप की औलाद हैं, बावर कर दूँ ।

आज 'रमन' ने हकीकत बयाँ कर डाला,
सुनने वालों को नसीहत, ये सरासर कर दूँ।

❖❖❖

नयन मूक भाषा में

- श्रीरमन

वेध तम जीवन का उदित प्रभाकर हो,
चेतना सदैव दिखे, इसी अभिलाषा में।
होगा, अंकुरित,कभी प्रेम इष्ट के हृदय,
जगती निरन्तर, है,ज्योति इसी आशा में।
करते प्रकट सदा कोटिक विचार आप,
बाँध सकते न इन्हें किसी परिभाषा में।
व्यक्त कर पाती है न भाव रसना जो कभी,
देते अभिव्यक्ति हैं, नयन मूक भाषा में।

टिक पाता न संयम, किंचित भी,
अनुराग की शक्ति, बढ़ा रहीं, आँखें।
निज कर्षण से ही विरागियों में,
छिपा ज्ञान का कोष, कढ़ा रही, आँखें।
शर काम का, लेके कटाक्ष में, ये,
भृकुटि के हैं, चाप चढ़ा रहीं, आँखें।
तप में रत, अन्तर कौशिक को,
सदा प्रीति का पाठ पढ़ा रहीं, आँखें।

हेयता–भाव दिखाती कभी,
कहीं भक्ति के पुष्प चढ़ा रहीं, आँखें।
दृष्टि से देती किसी को गिरा,
कहीं उन्नत पंथ बढ़ा रहीं, आँखें।
देख करें, अनदेखी,कोई छवि–
है, पुतली में मढ़ा रहीं,आँखें ।
संयम रीति सिखा रहीं तो कहीं–
प्रीति का पाठ पढ़ा रहीं, आँखें।

❖❖❖

सृजन स्मरण

श्रीधर पाठक

जन्म - 11 जनवरी 1858 निधन - 13 सितम्बर 1928

जिनके उपल नील उत्पल निभ,
जल भर-विनत, नवल घन चुम्बित।
जिन पर त्यों सब ओर विकल-रव,
निर्झर विमल बहै छवि मंडित।
बिलसै मुदित मयूर नृत्य-रत,
अगनित वृन्द,अमित आनन्दित।
सो मम प्राण-प्रिये ! पर्वत-वर,
करै चाह-युत चित्र उमंगित।

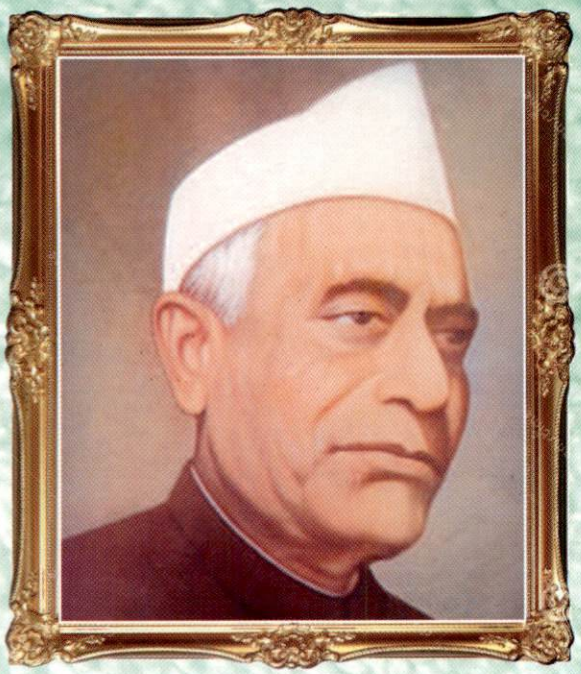

रामनरेश त्रिपाठी

जन्म - 4 मार्च 1889 निधन - 16 जनवरी 1962

तुम पुरुष हो, डर रहे हो व्यर्थ ही संसार से।
जीत लेते हो नहीं क्यों, त्याग से, उपकार से ?
सिर काटकर जी उठा उस दीप की देखो दशा।
दब रहा था जो अँधेरे के निरन्तर भार से।।
पिस गयी तब प्रेमिका के हाथ चढ़ चूमी गयी।।
मान मेंहदी को मिला है प्राण के उपहार से।।
तन दिया, पीसा गया, अंजन बना तब काम का।
तब उसे रखा दृगों में प्रेमियों ने प्यार से।।
लेखनी ने जीभ दी तब वह मिली भाषा उसे।
जो अमर बनकर बचाती सृष्टि को संसार से।।
प्रेम के पथ में यहाँ तो हार ही में जीत है।
भक्त को भगवान् मिलते हैं हृदय की हार से।।